

संस्कृत की एक पुरानी ग़ज़ल (संस्कृत-ग़ज़लों का इतिहास : एक अनुस्मरण)

- प्रताप कुमार मिश्र ©

Pratapm1977@gmail.com

की-वर्ड्स – ग़ज़ल, संस्कृत-ग़ज़ल, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री.

हालाँकि संस्कृत में ग़ज़ल लिखने की कवायद १९ वीं सदी के अन्तिम और २० वीं सदी के प्रारम्भिक चरण से शुरू हुई किन्तु इतनी नई विधा होने के बावजूद संस्कृत-साहित्य का इतिहास इस परम्परा के आदिम सूत्रधार और कालखण्ड को स्पष्ट और नाम्ना बतलाने से कतराता है। आज तक यह नहीं जाना जा सका है कि अरबी में पनपी, फारसी में फली-फूली और उर्दू में अपने पूरे शबाब को पहुँची औ' पहुँचती यह विधा संस्कृत में पहली बार किस क्रान्तिकारी कवि के हृदय में घर कर गई और उसने कब इस विधा को संस्कृत में अभिव्यक्ति का साधन बना लिया?

संस्कृत-ग़ज़लों की परम्परा भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जी के समय; या'ने १९२५-१९३५ ईस्वी से अपने मूर्त और प्रवाह रूप में दीख पड़ती है। संस्कृत-रङ्गमञ्च और नाट्य-परम्परा से सम्बन्धित कई विद्वानों के सामने मैंने कई बार यह जिज्ञासा रखी कि बिना किसी आधार, आदर्श, उदाहरण और बिना किसी सुदृढ परम्परा के महाकवि भास इतने उदात्त और महनीय नाटक; वह भी दो-चार की संख्या में नहीं, -पूरे के पूरे १३ नाटक लिख सकते हैं? संस्कृत-नाटकों की भास-पूर्व वह परम्परा और उसमें प्रणीत हुए वे असंख्य नाटक निश्चित रूप से या तो काल-कवलित हो गए या फिर टी. गणपति शास्त्री जैसे किसी पुण्यात्मा अनुसन्धित्सु की प्रतीक्षा में छिपे पड़े हैं। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री और उनके ५८ संस्कृत-ग़ज़लों के प्रसङ्ग में मुझे महाकवि भास और उनके १३ नाटकों की याद आ जाती है। १९२९ ईस्वी में शास्त्री जी ने जयपुर (राजस्थान) से 'गीतिवीथि:' नामक अपनी एक काव्य-कृति प्रकाशित की जिसमें 'उर्दूभाषाचत्वर' शीर्षक में उनके लिखे ५८ संस्कृत-ग़ज़ल भी सम्मिलित थे। आधुनिक संस्कृत-साहित्य के इतिहास में यह पहला अवसर था जब इतनी संख्या में संस्कृत-ग़ज़लों ने संस्कृत-सहृदय-समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज की। शास्त्री जी से पूर्व की संस्कृत-ग़ज़ल-परम्परा और उस परम्परा में

© अखिल भारतीय मुस्लिम-संस्कृत संरक्षण एवं प्राच्य शोध संस्थान, वाराणसी.

लिखी ग़ज़लों का कहीं कोई उल्लेख नहीं। अब या तो यह परम्परा थी ही नहीं या फिर यह अब तक अज्ञात है। ऐसे में हम शास्त्री जी को प्रथम संस्कृत-ग़ज़ल लेखक होने का श्रेय दे भी सकते हैं और नहीं भी दे सकते। लेकिन नहीं देने के क्रम में हमें उनका कोई पूर्ववर्ती उनके समक्ष प्रस्तुत करना पड़ेगा और यही कठिनाई है।

मथुरानाथ जी से पूर्ववर्ती किसी संस्कृत-ग़ज़लगी की पहचान आज तक नहीं हो सकी है। सम्भव है कि इस तरह (छन्द) में शास्त्री जी से पूर्व भी किसी ने क़लम उठायी हो और आज तक प्रकाश में न आ सका हो, और यह भी सम्भव है कि स्वयं शास्त्री जी ही इस तरह के पहले रचनाकार हों।

कुछ महीनों पहले मैं हिन्दी साहित्य के मूर्द्धन्य इतिहासकार और अनुसन्धा-प्रेमी आचार्य उदयशंकर दुबे जी के घर गया था तो उनका पुस्तकालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुरानी किताबों को उलटते-पुलटते अचानक 'सदाबहार' नामा एक किताब के अन्तिम पृष्ठ पर नज़र जा टिकी। वह इस लिए कि यह किताब लोकप्रचलित राग-लय और तालों में अवधी गीत, बन्दिश, भजन, होरी, ख्याल, ठुमरी, चैता आदि का संग्रह था लेकिन इसके अन्तिम पृष्ठ पर संस्कृत का एक ग़ज़ल प्रकाशित था। 'ग़ज़ल' शीर्षक के द्वारा प्रकाशित यह ग़ज़ल एकबारगी अपने रचना-सौष्ठव से किसी भी पाठक का ध्यान अपनी ओर खींचने का माद्दा रखता है। इसे पढते ही मेरा ध्यान संस्कृत ग़ज़ल के उपर्युक्त इतिहास और इसके प्रथम प्रयोक्ता पर जा ठहरा।

इस पुस्तक का पहला पृष्ठ, यानी मुख-पृष्ठ अनुपलब्ध होने के कारण यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह किस काल खण्ड की रचना है किन्तु पुस्तक के लीथो रूप और आकार प्रकार को देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि यह 1890 से 1930 या 1940 ईस्वी के आस-पास का प्रकाशन है।

संस्कृत ग़ज़लों के इतिहास में यह ग़ज़ल अपनी क्या भूमिका अदा करेगी यह तो भविष्य के गर्भ में है, फ़िलवक़्त पाठकों के समक्ष इसकी प्रस्तुति और विचार हेतु आमन्त्रण ही इस छोटे से आलेख का विषय है।

ग़ज़ल का मूल पाठ निम्नवत् है -

बसन्तश्चारु आयातो ममानङ्गप्रदीपोऽयम्।

प्रभाते वै प्रवातोऽपि निकुञ्जे भृङ्गगुञ्जोऽयम्॥१

वने कच्छे पुरे पण्ये नदीतीरे तमालेऽपि।
गिरौ गोदावरीकूले लसत्यस्मिन् रसालोऽयम्॥२
लसत्कालिन्दिकाकूले कदम्बानां कदम्बेऽपि।
कलापी कोकिला कूजत्यजस्रं भृङ्गपुञ्जोऽयम्॥३
चलन्मन्दे समीरे हे शुभे वृन्दावने रम्ये।
लतापत्रान्तरे नक्तं विलीनश्चैत्रचन्द्रोऽयम्॥४
क्व सा रासस्थली पुण्या क्व वै वंशीनिनादोऽपि।
निशा सा क्वास्ति कल्याणी क्व हा मे कृष्णचन्द्रोऽयम्॥५
क्व सा राधा क्व सा गोपी क्व वा सा गोकुला रम्या।
क्व वा सस्तद्विहङ्गानां क्व वाशा गोप्यनाथोऽयम्॥६
सतृष्णा वर्त्तते दीना विना कृष्णन्तु वृन्दैषा।
सनाथा द्वारका जाता विनाथो मोहनः सोऽयम्॥७

सदाबहार, पृष्ठ-४०

पद्य संख्या ६ में रेखांकित पद व्याकरण और अर्थानुसन्धान की दृष्टि से विचारणीय है। इसके ठीक अगला पद भी उसी तरह अस्पष्ट है।



